दिसंबर 21, 2005
सत्र 4

अध्यक्षः प्रोफेसर फरीदा खान

फरीदा खानः दिन के इस आखरी सत्र में 2 वक्ता हैं। सत्र का विषय मूल्यांकन से सम्बंधित है। पहले वक्ता होंगे प्रोफेसर पंचापकेसन, जो दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रह चुके हैं। इसके बाद 'आईडिस्कवरी' में कार्यरत तपस्विनी साहू बोलेंगी। 'आईडिस्कवरी' हरिटेज स्कूल का एक प्रोजेक्ट है। यह मूल्यांकन का एक प्रोजेक्ट है जिसमें बच्चों को अलग व दिलचस्प ढंग से देखने का प्रयास किया जाता है। मैं प्रोफेसर पंचापकेसन को अपनी बात कहने को आमंत्रित करती हूं। दोनों वक्ताओं को 20-20 मिनट मिलेंगे और उसके बाद सवाल-जवाब का मिला-जुला सत्र होगा।

प्रोफेसर पंचापकेसन

मूल्यांकन व परीक्षा

शुक्रिया अध्यक्ष मैडम। मैं आयोजकों का शुक्रगुज़ार हूं कि उन्होंने मुझे यहां आकर बोलने को कहा। मैं यहां बोलने को लेकर थोड़ा आशंकित हूं क्योंकि यहां समाज वैज्ञानिक उपस्थित हैं और तीस साल पहले जब होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (हो.वि.शि.का.) शुरू हुआ था, तब से विज्ञान और समाज विज्ञान की शब्दावली काफी बदल गई है। उदाहरण के लिए जिन्हें हम गैर सरकारी संगठन या एन.जी.ओ. कहते थे, उन्हें अब शायद सिविल सोसायटी कहा जाता है। और जिन्हें हम ग्रामीण गरीब कहा करते थे, वे अब-आल्टर्न हो गए हैं। लिहाज़ा मुझे पता नहीं कि मैं भाषा के साथ तालमेल रख पाऊंगा या नहीं। मैं अपनी बात की शुरुआत यह कहकर करना चाहूंगा कि विज्ञान का मकसद ईश्वर-मुक्त करना नहीं है। जैसा कि हम सब सहमत हुए हैं, वैज्ञानिक ईश्वर में यकीन करते हैं।

सबसे पहले तो यह थोड़ा अजीब लगता है कि मुझे मूल्यांकन पर बोलने के लिए चुना गया है क्योंकि मुझे लोगों के बारे में फैसले करने को लेकर बहुत नफरत है। मैं यू.जी.सी. या सी.एस.आई.आर. द्वारा आयोजित एन.ई.टी. परीक्षा की किसी भी समिति में नहीं रहा, यहां तक कि अपने ही विभाग की प्रवेश समिति में भी नहीं रहा। ऐसा नहीं है कि मैं ये काम करने से इन्कार करता हूं, मगर मुझसे कभी कहा ही नहीं गया। या तो अन्य लोगों ने मेरी अनिच्छा को भांप लिया था या उन्हें मेरी क्षमता को लेकर शंका थी। मगर किसी वजह से मैं हो.वि.शि.का. के मूल्यांकन से जुड़ा। छात्रों का प्रदर्शन इतना खराब होता था कि उन्हें एक ग्राफ पर अंकित करना होता था - प्राप्तांकों का एक सरल विश्लेषण किया जाता था, जिसे बाद में बदला जा सकता था ताकि एक ठीक-ठाक वितरण मिल सके। हम इसे परिष्कृत हेराफेरी कहते हैं। यदि ऐसा न किया जाए, तो सारे छात्र सबसे नीचे के ढेर में होंगे। तो हमें उन्हें ऊपर लाना होता था। मुझे नहीं पता कि क्या इस विश्लेषण विधि को बाद में बदला गया, संशोधित किया गया या वैसे ही जारी रखा गया। बहरहाल यही एकमात्र कारण है कि मैं आपके सामने स्कूलों में मूल्यांकन की बात करने को खड़ा हूं। ज़ाहिर है, मुझे अपने छात्रों का मूल्यांकन तो करना ही होता था।

मेरी पहली टिप्पणी उसी में से निकलती है जो मैंने अब तक कहा है। हो.वि.शि.का. के स्रोत दल को ऐसे काम करना पड़ते थे, और अक्सर वे करना भी चाहते थे, जिन्हें करने के लिए वे योग्यता प्राप्त नहीं थे मगर मन ही मन करने को इच्छुक थे। हमारे साथ ऐसे लोग थे जो चित्र बनाते थे, किताबों का लेआउट व डिज़ाइन करते थे और ऐसे अनेक काम करते थे जिनके लिए उनके पास योग्यता नहीं थी मगर वे उन्हें शौकिया ढंग से करने को उत्सुक थे और हो.वि.शि.का. ने उन्हें इसके लिए एक मौका दिया था। कई मामलों में उनके प्रयास बहुत सृजनात्मक होते थे और काफी सफल भी रहे थे। यह एक ऐसी चीज़ है, जिसे औपचारिक तंत्र कभी बढ़ावा नहीं देता। मैं सोचता हूं यह जन विज्ञान आंदोलनों का एक सकारात्मक पक्ष है।

अब मैं मूल्यांकन की ज़रूरत और संस्थागत ढांचे की त्रुटिपूर्ण प्रकृति पर बात करूंगा। आज के वक्तव्य में मेरी प्रमुख थीम यह है कि शिक्षा के क्षेत्र में काम रहे कार्यकर्ताओं के लिए दूसरे चरण पर जाने का वक्त आ गया है। दूसरे चरण से मेरा आशय क्या है? पहला चरण था कि शिक्षा को बाल केंद्रित बनाने पर सहमति बने। आपमें से कई लोग जानते ही हैं कि दिल्ली में एन.सी.ई.आर.टी. के नेतृत्व में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचा (एन.सी.एफ.) बनाने की व्यापक कवायद चल रही है और उन्होंने तय किया है कि बाल-केंद्रीकरण सबसे अहम चीज़ है। मैं पूरी तरह इससे सहमत हूं। मैं समझता हूं आप सब भी इससे सहमत होंगे। एन.सी.एफ. ने ऐसा कर भी दिया है। अलबत्ता, बाल-केंद्रीकरण एक आदर्श कल्पना है। इसके लिए आदर्श परिस्थितियों की ज़रूरत होती है - छात्र-शिक्षक अनुपात कम हो, शिक्षक अत्यंत योग्य व उत्साही हों, वगैरह। दूसरे चरण पर जाने का मतलब है कि कमियों को पहचानना और गैर-आदर्श परिस्थितियों में काम करना। इसके लिए काफी अनुकूलन (optimization) करना होगा। यहां यह ध्यान दिलाया जा सकता है

कि अर्थशास्त्र में अधिकांश तरक्की बाज़ार की खामियों और त्रुटिपूर्ण प्रतिस्पर्धा को पहचानने के फलस्वरूप हुई है। यदि आप सिर्फ एडम स्मिथ के गुप्त हाथ पर भरोसा करते रहते, तो अर्थशास्त्र कभी आगे न बढ़ता। यह अद्वैत में विश्वास करने जैसा है - क्योंकि आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं, इसलिए जो कुछ आत्मा करेगी वही ब्रह्म भी करेगा। यह ठीक इस तरह नहीं चलता। बीच में एक पूरा समाज है जो चीज़ों को पूरी तरह बदल देता है। कोई भौतिक नियम सारे प्रेक्षकों के लिए एक ही रहता है मगर हर प्रेक्षक इसका उपयोग अपने स्थान-समय के अनुरूप करता है। यह उसी बात को कहने का वैज्ञानिक तरीका है, भौतिकी का तरीका है।

चलिए एक सरल उदाहरण से शुरू करते हैं। यदि हमारे पास एक ऐसी कक्षा है जिसमें 5-6 की बजाय तीस छात्र हैं। तब यह ज़रूरी हो जाता है कि छात्रों के साथ टोलियों में काम किया जाए क्योंकि एक समय पर हम पांच या छः से ज़्यादा छात्रों के साथ काम नहीं कर सकते। फिर हमें हाजरी रजिस्टर की ज़रूरत होती है। कक्षा में प्रस्तुतीकरण और गृहकार्य और इनके मूल्यांकन व आकलन की ज़रूरत होती है। यदि आपके पास मात्र एक-दो छात्र हों - जैसा कि पीएच.डी. कार्यक्रम में होता है - तो आपको इन औपचारिकताओं की चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। इसके अलावा आपको समय-समय पर अंतिम परीक्षा लेनी होती है। यदि छात्रों की संख्या कम हो, तो इस सबकी कोई ज़रूरत नहीं है। या तीस साल पहले हो.वि.शि.का. का उदाहरण लेते हैं। शिक्षक गैर-अर्हता प्राप्त थे, उनमें से किसी ने भी विज्ञान नहीं पढ़ा था, किट सामग्री का अभाव था, दशमलव का ज्ञान नहीं था, और दशमलव न मालूम हो, तो आप विज्ञान में कुछ नहीं कर सकते। छात्रों में भाषा दक्षता नहीं थी और एक अनुपयुक्त परीक्षा मौजूद थी। हो.वि.शि.का. समूह ने शिक्षकों के साथ मासिक संगोष्ठियां आयोजित करके, किट की डिज़ाइनिंग, खरीद और वितरण में शामिल होकर, दशमलव पर एक अध्याय तैयार करके इन समस्याओं को संबोधित किया। और यह वाकई एक विशाल काम था। अनिल (सद्गोपाल) यहां नहीं है, वरना वह घण्टों कहानियां सुनाता, सैद्धांतिक व प्रायोगिक परीक्षा डिज़ाइन करने व संचालित करने की। उस स्तर पर प्रायोगिक परीक्षा अनसुनी बात थी, और हमारे साथ दिल्ली, बंबई व कानपुर व अन्य कई स्थानों से आई टीम थी, जिन्होंने ये परीक्षाएं सेट कीं और मूल्यांकन किया।

बदकिस्मती से भाषा दक्षता की समस्या को संबोधित न किया जा सका। यह हमारे दायरे से बहुत बाहर था। और भी कई समस्याओं को संभाला नहीं गया हालांकि हम उनके बारे में जानते थे। इनमें से कुछ समस्याओं का सम्बंध पी.एम.टी., इंजीनियरिंग या जे.ई.ई. में प्रवेश को लेकर पालकों की चिंताओं से सम्बंधित थीं। नौवीं व उससे आगे की कक्षाओं में प्रदर्शन में कोई ठोस अंतर हासिल न करने की वजह से हम सचेत थे कि हमारे प्रशिक्षण से छात्रों को इन कक्षाओं में कोई लाभ नहीं मिलता है हालांकि हम दावा करते थे कि हम कुछ बेहतर कर रहे हैं। और निश्चित रूप से, हमारी वर्तमान प्रणाली एक अच्छी शिक्षा प्रणाली नहीं है मगर इसमें ज़्यादा अंक प्राप्त करने के लिए निहायत सुस्पष्ट दिशानिर्देश और कोचिंग पद्धति निहित रूप से उपलब्ध है। लिहाज़ा इस प्रणाली में छात्र जानते हैं कि अच्छे अंक कैसे प्राप्त किए जाएं, जो हम छात्रों को कभी नहीं सिखाते थे।

खैर, मूल्यांकन पर चलें, और मेरा मुख्य मुद्दा यह है कि जब ढेर सारी खामियां होती हैं तो आपको विभिन्न मुकामों पर मूल्यांकन की ज़रूरत पड़ती है। एन.सी.एफ. में मूल्यांकन के बारे में कहा गया है, "शिक्षा का उद्देश्य सार्थक जीवन की तैयारी से सम्बंधित है, और मूल्यांकन से इस तरह की शिक्षा के क्रियांवयन की सफलता पर फीडबैक मिलना चाहिए।" अब आप यह आकलन कैसे करेंगे कि शिक्षा अर्थपूर्ण जीवन दे पाने में सफल हुई है या नहीं? यह असंभव है क्योंकि यह इतनी अमूर्त अवधारणा है। मगर हमारा एन.सी.एफ. यहीं से शुरू करता है और कहता है, "बौद्धिक व शैक्षिक उपलब्धियों पर सीमित फीडबैक भी तभी दिया जा सकता है जब शिक्षक पाठ्य विषय पढ़ाने से पहले मूल्यांकन की तकनीक, मूल्यांकन की कसौटियों और उसके लिए अपनाए जाने वाले साधनों को लेकर तैयार हों। छात्र की उपलब्धियों की गुणवत्ता के आकलन के अलावा विभिन्न क्षेत्रों में सीखने का आकलन करने हेतु, शिक्षक को मूल्यांकन के विभिन्न मदों में प्रदर्शन को देखना व उसका विश्लेषण करना होगा। मूल्यांकन का मकसद परीक्षण में उजागर हुई छात्र की क्षमताओं के मद्दे नज़र सीखने-सिखाने की प्रक्रिया व सामग्री को बेहतर बनाना और उन उद्देश्यों की समीक्षा करना है जिनके साथ हमने शुरुआत की थी।" विचार यह है कि परीक्षण से हमें छात्र की क्षमताओं का पता चलेगा, और फिर हम पाठ्य वस्तु को बदलेंगे ताकि छात्रों को ज़्यादा लाभ मिले। क्या हमारे देश के गैर-लचीले तंत्र में इसकी कल्पना भी की जा सकती है? "सीखने के मूल्यांकन में हमें सृजनात्मकता, नवाचार प्रवृत्ति, संपूर्ण व्यक्ति के विकास, सीखने के प्रति रवैये और स्वतंत्र रूप से सीखने की क्षमता के मापदंडों को भी शामिल करना चाहिए, परीक्षा व मूल्यांकन विश्वसनीय होने चाहिए और सीखने का मापन करने के वैध तरीकों पर आधारित होना चाहिए।" ये सब सुंदर कथन हैं मगर हर चरण पर आपको बच्चे की क्षमताओं का आकलन चाहिए, हमारे उद्देश्यों का आकलन चाहिए, हमारी शिक्षण विधि का आकलन चाहिए और इस बात का आकलन चाहिए कि ये आपस में कैसे मेल खाते

हैं। और आप देख ही सकते हैं कि यदि आप यह हर चरण पर न करें, तो आपकी व्यवस्था अधूरी रहेगी। एन.सी.एफ. समूह के साथ काम कर रही परीक्षा सुधार समिति ने जो सुझाव दिया है वह मेरे ख्याल में शिक्षा शास्त्रियों को पहले से पता था हालांकि मैं इसके बारे में पहले नहीं जानता था। इसे सी.सी.ई. कहते हैं। मैंने सोचा कि सी.सी.ई. का मतलब है चाइल्ड सेंटर्ड इवैल्यूएशन (बाल केंद्रित मूल्यांकन)। मगर बदकिस्मती से ऐसा नहीं है। इसका मतलब है कन्टीन्यूअस एण्ड कॉम्प्रीहेंसिव इवैल्यूएशन (सतत व समग्र मूल्यांकन)। और इसके साथ शिक्षक सशक्तिकरण की ज़रूरत बताई गई है। यकीनन यह निहायत ज़रूरी है। यदि आपका शिक्षक एक छात्र का सतत मूल्यांकन करने वाला है, तो शिक्षक के पास ऐसा करने का अधिकार होना चाहिए। और शिक्षकों को अधिकार सम्पन्न करने का वक्त आ चुका है। बदकिस्मती से हमारे तंत्र में शिक्षक को सबसे कम अधिकार हैं, दूर बैठे निरीक्षक को सबसे ज़्यादा अधिकार प्राप्त हैं। अब सतत मूल्यांकन व शिक्षक सशक्तिकरण के इस सुझाव को एन.सी.एफ. में कमज़ोर कर दिया गया है। एन.सी.एफ. में चेतावनी दी गई है कि सी.सी.ई. रिकॉर्ड रखने के लिए शिक्षक के समय और क्षमता की भारी मांग करता है, इसलिए 30 छात्रों की कक्षा में कोई शिक्षक हरेक चरण पर सारे छात्रों का सतत व समग्र मूल्यांकन नहीं कर पाएगा। (एन.सी.एफ. में) कई स्थानों पर यह स्पष्ट है कि परीक्षण बनाना, उनकी विश्वसनीयता व वैधता सुनिश्चित करना एक विशिष्ट काम है जिसके लिए पेशेवरों की ज़रूरत है।

तो यह एक टकराव है और मेरा कहना है कि यह टकराव हमारी सामाजिक अंतर्क्रिया या समाज विज्ञान का एक आम हिस्सा है। परीक्षा सुधार समिति कहती है कि हमें सतत व समग्र मूल्यांकन अपनाना चाहिए। मगर एन.सी.एफ. कहता है कि हम ऐसा नहीं कर सकते, हमें इसे थोड़ा कम करना होगा। यह मुझे मशहूर भौतिक शास्त्री नील्स बोह्र की याद दिलाता है, आप में से कई लोगों ने उनके बारे में सुना होगा। आइंस्टाइन के साथ उनकी कई बहसें हुई थीं, और कई में वे जीते भी थे। यह वर्ष आइंस्टाइन की खोजों शताब्दी वर्ष है। नील्स बोह्र का कहना था कि एक महान सत्य वह होता है जिसके लिए सत्य और उसका विपरीत, दोनों सही हों। तो यहां हम देखते हैं कि सत्य और उसका विपरीत दोनों सही हैं। सी.सी.ई. यानी सतत व समग्र मूल्यांकन इसी श्रेणी में आता है। सी.सी.ई. का होना भी सत्य है, उसका न होना भी सत्य है। समाज विज्ञान ऐसे महान सत्यों से भरा पड़ा है। बदकिस्मती से भौतिकी में भी ऐसे कुछ सत्य हैं, जैसे तरंग-कण द्वैत है। इसीलिए बोह्र को यह कहना पड़ा था। मगर जब आप मानव की सामाजिक अंतर्क्रिया पर आते हैं तो वहां परम सत्य कभी नहीं होता। आपको समझौते करना होते हैं, इसके लिए आपको आकलन चाहिए और आकलन के लिए सांख्यिकीय विश्लेषण की ज़रूरत होती है। इसलिए, जैसा कि कई समितियों ने कहा है, मूल्यांकन वास्तव में ऐसा काम है जिसके लिए पेशेवरों की ज़रूरत होती है। हमारे देश में ऐसे पेशेवरों का अभाव चिंता का विषय है।

कॉर्पोरेट क्षेत्र को भी मूल्यांकन की ज़रूरत होती है क्योंकि उन्हें लगातार लोगों को भर्ती करना होता है। आजकल वे इसके लिए आयात का सहारा ले रहे हैं। वे कई सारे परीक्षण विदेशों से आयात करते हैं, और इनका उपयोग लोगों की भर्ती के लिए करते हैं। बदकिस्मती से शैक्षिक क्षेत्र में ऐसा नहीं किया जा रहा है और मैं नहीं जानता कि यह वांछनीय है या नहीं। हमें अपनी विशेषज्ञता विकसित करनी चाहिए और मेरे ख्याल से हमारे देश में इस बात की बहुत ज़रूरत है कि खास तौर से एन.जी.ओ. के पास ऐसी परीक्षण विधियां, ऐसे परीक्षण संस्थान, परीक्षण पैकेजेस विकसित करें क्योंकि आजकल कई चीज़ों के लिए पैकेज होते हैं। जैसे आपने सुना होगा कि अमेरिका में एस.ए.टी. परीक्षा है, कॉलेज में प्रवेश से पहले आपको इस परीक्षा में बैठना होता है। और एक समय था जब एस.ए.टी. एकदम पत्थर की लकीर थी। पिछले पांच वर्षों में ही इसकी आलोचना होने लगी है और वे लोग परीक्षण विधियां बदल रहे हैं। मगर हमारे पास तो ऐसा कोई संस्थान ही नहीं है जिसकी आलोचना की जा सके। सबसे पहले आपके पास आलोचना करने के लिए कोई संस्था होनी चाहिए, तभी आप उसे बेहतर बना सकते हैं।

मैं कुछ बात वैज्ञानिक मिज़ाज की करूंगा। वैज्ञानिक मिज़ाज की बात करने से पहले हमें विज्ञान और धर्म की अनम्यता से छुटकारा पाना होगा और इसके लिए हमें उन चीज़ों के बीच भेद करना होगा जिन्हें मैं प्राकृतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान कहूंगा। आप सभी इन शब्दों से वाकिफ हैं। प्राकृतिक विज्ञानों को कभी-कभी कठोर विज्ञान कहा जाता है और सामाजिक विज्ञानों को कभी-कभी मुलायम विज्ञान कहा जाता है। इसकी चर्चा करने के लिए पहले हमें उस चीज़ की बात करनी होगी जिसे मैं व्यक्ति की विश्व दृष्टि कहता हूं और इस खास विश्व दृष्टि में विभिन्न प्रकार के ज्ञान की बात करनी होगी। इस विश्व दृष्टि में हम एक बाह्य विश्व और एक आंतरिक विश्व की बात कर सकते हैं। जन्म के साथ ही मुझे अनुभूतियां मिलती हैं और मैं इन अनुभूतियों को व्यवस्थित करने का प्रयास करता हूं। स्वाभाविक रूप से मैं मानता हूं कि एक इन्सान के रूप में मेरी एक स्वतंत्र इच्छा है। मैं उन वैज्ञानिकों से सहमत नहीं हूं जो कहते हैं कि हमारी कोई स्वतंत्र इच्छा नहीं है। मैं मानकर चल रहा हूं कि स्वतंत्र इच्छा है। तो इस स्वतंत्र

इच्छा से लैस होकर मैं ये सारी अनुभूतियां प्राप्त करता हूं और इन्हें अपनी क्षमता के अनुसार विशिष्ट ढंग से व्यवस्थित करता हूं। और ये सारी अनुभूतियां मिलकर एक निश्चित विश्व का निर्माण करती हैं। अब मैं इस विश्व को दो भागों में बांट सकता हूं - बाह्य व आंतरिक विश्व। अपनी अनुभूतियों को क्रमबद्ध करने से मुझे समय का प्रवाह मिल जाता है। और इसे मैं निजी समय कह सकता हूं। इसे भौतिक समय से जोड़ा जा सकता है, जिसके बारे में सब लोग बात करते हैं। ये आपस में किस तरह सम्बंधित हैं, यह आसान चीज़ नहीं है। दार्शनिकों ने इस पर ढेरों किताबें लिखी हैं। बहरहाल मैं यह मानकर चल रहा हूं कि इस काम को एक सहज बुद्दि के आधार पर किया जा सकता है, और मेरे निजी समय का सम्बंध भौतिक समय से जोड़ा जा सकता है। बाह्य विश्व वस्तुनिष्ठ अवैयक्तिक विश्व है, जो मेरे जन्म से पहले भी अस्तित्व में था, और मेरी मृत्यु के बाद भी अस्तित्व में बना रहेगा। वर्तमान में मैं इसी में जी रहा हूं। यह भौतिकी और शेष समस्त विज्ञानों का विश्व है। भावनाएं और जज़्बात इस दुनिया में प्रवेश नहीं करते। तर्क, वैज्ञानिक विधि, दोहराने की संभावना, मिथ्याकरण - सब निहायत ज़रूरी हैं। इस विश्व का एक सार्वभौमिक समय और इतिहास है। इसका कोई पसंदीदा या स्वाभाविक केंद्र नहीं है और यह हरेक व्यक्ति को उसकी अनुभूतियों के ज़रिए सुगम है। विज्ञान का सम्बंध सृजनात्मक अनुभव से है, यह दोनों विश्वों - बाह्य व आंतरिक - में फैला है। विज्ञान में शुद्ध अनुभव की भूमिका को पकड़ पाना मुश्किल रहा है। हम नहीं जानते कि क्या वास्तव में रामानुजम नामगिरी देवी को देखते थे और क्या वाकई देवी ने उनकी मदद की थी। अलबत्ता हम इतना जानते हैं कि रामानुजम ने जो खोज की, वह सही थी क्योंकि अन्य गणितज्ञों ने उसकी जांच करके सही पाया है।

ऐसा ही कुछ केपलर के साथ भी हुआ था। केपलर को भी इसी तरह के दर्शन होते थे और उन्होंने कई चीज़ों की खोज की थी, जिनमें से अधिकांश गलत थीं मगर कुछ सही थीं क्योंकि हम भौतिकी में जांच के द्वारा यह पता कर सकते हैं। विज्ञान में चीज़ों की जांच करना मुश्किल नहीं होता मगर शुद्ध अनुभव की जांच नहीं हो सकती, इसलिए शुद्ध अनुभव विज्ञान में बहुत उपयोगी नहीं होते। विज्ञान ने वैज्ञानिक विधि के नाम पर तर्क व तार्किकता (logic and reason) के उपयोग को पुष्ट किया है। इसका उपयोग सामाजिक विज्ञानों में भी बढ़ते क्रम में हो रहा है। यकीनन विज्ञान के प्रादुर्भाव से पहले भी तर्क व बहस का उपयोग होता था। मशहूर अर्थ शास्त्री अमर्त्य सेन ने तर्कशील भारतीय (Argumentative Indian) पर पूरी एक किताब लिखी है। तो शास्त्रार्थ तो वैदिक समय से ही रहा है। विज्ञान ने सिर्फ तार्किक बहस और सत्यापन की ज़रूरत पर बल दिया है।

अब हम वैज्ञानिक मिज़ाज पर आते हैं। वैज्ञानिक मिज़ाज जीवन में उठने वाले विविध सवालों पर एक रवैये का नाम है। जैसे अंधविश्वास, धार्मिक सत्ता के फतवों को स्वीकार करना वगैरह। ये सब मानव निर्मित नियमों पर टिके हैं, वैज्ञानिक नियमों पर नहीं। ये सामाजिक विज्ञान के अंग हैं। वैज्ञानिक मिज़ाज हासिल करना मूल्य हासिल करने जैसा ही है। विज्ञान का वैज्ञानिक मिज़ाज से कुछ लेना-देना नहीं है, हालांकि यह संपूर्ण शिक्षा के लिए बहुत ज़रूरी है। इन्सान की संपूर्ण शिक्षा के लिए सही मूल्य हासिल करना और वैज्ञानिक मिज़ाज हासिल करना निहायत ज़रूरी है। मगर यह उम्मीद न करें कि यह काम विज्ञान शिक्षा करने वाली है। यह बात हो.वि.शि.का. के इतिहास में भी देखी जा सकती है। विज्ञान की दुहाई देने वाले हो.वि.शि.का. का विरोध कभी किसी सांस्कृतिक समूह ने नहीं किया। इसने कभी किसी विरोध को जन्म नहीं दिया, जिसका मतलब है कि यह कारगर नहीं था। मगर जैसे ही एकलव्य ने इतिहास व समाज विज्ञान के अन्य विषयों में कदम रखा, विरोध शुरू हो गया। यह साफ था कि अब चोट वहां लग रही थी, जहां लगनी चाहिए। तो कृपया विज्ञान के पीछे न पड़ें। एकलव्य ने हमें यही सिखाया है।

चर्चा

राजेंद्र सिंहः मैं सिर्फ एक स्पष्टीकरण चाहता था, बाह्य बनाम आंतरिक (विश्व) के बीच भेद का आव्हान करके कहीं आप उस शरीर-मस्तिष्क विभाजन को तो पुनर्जीवित नहीं कर रहे हैं जिसकी काफी गहन जांच पड़ताल पिछले 10-20 सालों में हुई है। आम सहमति यह है कि ऐसा विभाजन संभव नहीं है क्योंकि हम सब एक ही प्रकृति के हिस्से हैं। तो इस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है। यदि अध्यक्ष अनुमति दें, तो मैं इसका एक उदाहरण देना चाहूंगा। जैसे कुछ लोगों ने दलील दी है कि देकार्ते की *घोस्ट इन दी मशीन* की मान्यता या उपमा चल नहीं सकती क्योंकि न्यूटन ने उस मशीन को ध्वस्त कर दिया था और वह प्रेत 15-20 साल पहले मर चुका है। लिहाज़ा बाह्य व आंतरिक के विभाजन की बात करना एक ऐसे विभाजन को पुनर्जीवित करने की कोशिश-सा लगता है, लोग जिससे छुटकारा पाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं।

पंचापकेसनः दरअसल यह बहुत बड़ा विषय है। मैंने इसकी बात एक मोटे-मोटे ढांचे में उसी हद तक की है जितनी हमारे लिए ज़रूरी है। यदि आप वास्तव में इसमें घुसना चाहते हैं, तो यह एक गहरा विषय है क्योंकि इसने विज्ञानों को भी कई तरह से प्रभावित किया है। वास्तव में सवाल बाह्य और आंतरिक विश्व के बीच संपर्क बिंदु का है। उदाहरण

के लिए क्वांटम यांत्रिकी के प्रादुर्भाव के बाद भौतिक शास्त्री काफी समय तक विश्वास करते रहे कि क्वांटम यांत्रिकीय अनिश्चितता ही स्वतंत्र इच्छा और संपर्क बिंदु वगैरह का प्रादुर्भाव करेगी। और वास्तव में प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री यूजीन विग्नर ने सुझाया है कि... क्या आप जानते हैं कि इसमें यह बात भी जुड़ जाती है कि चेतना कहां से आती है और चेतना कैसे विज्ञान में प्रवेश करती है - यूजीन का सुझाव था कि जब क्वायंम यांत्रिकीय तरंग फलनों को वास्तविक यथार्थ में तबदील करते हैं, वही समय होता है जब आप चेतना में कदम रखते हैं। और, चूंकि मैं नहीं जानता कि आप क्या सोच रहे हैं, इसलिए जैसे ही यह आपके दिमाग में घुसता है यह मेरे लिए एक तथ्य हो जाता है। तो ऐसा कहा जाता था कि विग्नर ने तरंग फलन को चेतना में बदल दिया है। मुझे लगता है कि बदकिस्मती से भौतिक शास्त्री इसे अब नहीं मानते क्योंकि खुद प्रकृति में ही तमाम गैर-रैखीयताएं हैं और कई अन्य किस्म की रिडक्शन प्रक्रियाएं मौजूद हैं। पूरी चीज़ को रिड्यूस करने के लिए आपको मानव मस्तिष्क की ज़रूरत नहीं है। कई लोग मानते हैं कि आपके चेतना के स्तर पर आने से काफी पहले ही क्वांटम तरंग फलन डीकोहरेन्ट हो जाता है। तो शायद चेतना भौतिकी से हटकर जीव विज्ञान और मस्तिष्क अध्ययन की ओर जा रही है। आप जानते ही हैं कि मस्तिष्क अध्ययन भी काफी पेचीदा कारोबार है और इसलिए पता नहीं यह कैसे-क्या चलेगा। मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूं कि इसके निहितार्थ काफी पेचीदा हैं। मगर मुझे लगा कि हमारे उद्देश्य से इन्हें इस तरह विभाजित करना, जैसा हमने किया, ठीक है।

नरसिंहनः इस व्याख्या ने कुछ हद तक मेरी बात को भांप लिया था मगर फिर भी मुझे लगता है कि आपने विज्ञान और आध्यात्मिकता के बीच जो भेद किए हैं, वे कुछ हद तक शंकास्पद हैं। मुझे पता नहीं कि आप आइंस्टाइन के इस कथन के बारे में क्या कहेंगे कि ईश्वर पांसे नहीं खेलता। यह कथन उन्होंने क्वांटम यांत्रिकी के संदर्भ में दिया था। आप इसे वैज्ञानिक कथन कहेंगे या आध्यात्मिक?

पंचापकेसनः इसका जवाब देना बहुत आसान है। देखिए, खुशकिस्मती से या बदकिस्मती से वैज्ञानिक लोग ईश्वर शब्द का उपयोग काफी ढीले-ढाले ढंग से करते हैं। जैसे यह कहने की बजाय कि प्रकृति इस ढंग से बनी है, हम कहते हैं कि भगवान ऐसा करना चाहता है। उदाहरण के लिए मैं आइंस्टाइन को उद्धरित कर सकता हूं जहां उन्होंने कहा है कि अंतिम नैतिक आदर्श ऐसे चंद लोग ही दे सकते हैं जिन्होंने इल्हाम का अनुभव किया है। वास्तव मे मैं इसे हर जगह उद्धरित करता था मगर मुझे पता नहीं था कि यह व्याख्यान क्या रूप लेने वाला है। तो आइंस्टाइन और कई अन्य लोगों के कई उद्धरण हैं, जहां वे कहते हैं कि जब नैतिकता की बात आती है, तो उन्हें काफी पेचीदा प्रक्रिया पर निर्भर होना पड़ता है, चाहे आप अनुकरणीय उदाहरणों पर भरोसा करें या किसी पुरोहित पर या ऐसे लोगों पर जिन्होंने एक हद तक ऐसा सन्यास प्राप्त कर लिया है जो सबको दिखता है। यह वैसा ही जैसे कि आप वोट डालते हैं। या आप किसी धर्मात्मा पर कैसे भरोसा करते हैं? आप धर्म में विश्वास कैसे करते हैं? यह कहना मुश्किल है, यह विज्ञान से आगे जाता है। तो आइंस्टाइन का यह कथन कि ईश्वर पांसे नहीं खेलता, ज़रूरी नहीं कि इससे किसी अन्य चीज़ से मूल्य निष्कर्षित करने या भगवान और विज्ञान के परस्पर सम्बंधों पर उनके वास्तविक विचारों की झलक मिले।

नरसिंहनः ईश्वर शब्द के उपयोग को लेकर जो कुछ कहा गया है, उस पर मेरी घोर आपत्ति है, मगर मैं बहस में पड़ना नहीं चाहता।

अनाम व्यक्तिः माफ कीजिए, मगर मैं उसी सवाल पर बात करना चाहता हूं - बाह्य व आंतरिक विश्व का विभाजन। मेरा ख्याल है कि न सिर्फ आपने जो कुछ कहा बल्कि दिन भर में जो टिप्पणियां की गई हैं, उनके संदर्भ में मुझे लगता है कि एक किस्म से श्रेणियों की गफलत हो रही है, जैसे जिसे आप आंतरिक विश्व कह रहे हैं वह पूरी तरह विज्ञान का विषय है। क्या बाह्य विश्व विज्ञान से संचालित होता है, और आंतरिक विश्व विज्ञान से संचालित होता है या नहीं या किसी सर्वथा भिन्न चीज़ से संचालित होता है। यदि आप पहले यह तय कर लें कि विज्ञान का मकसद क्या है, तो मुझे यकीन है कि बाह्य विश्व तो निश्चित रूप से विज्ञान का विषय है, मगर आंतरिक विश्व भी उतना ही विज्ञान के दायरे में है। इसका मतलब यह नहीं है कि विज्ञान आपको बताएगा कि कैसा महसूस करो, या आपको प्यार करना चाहिए अथवा नफरत, या आपको प्रार्थना करनी चाहिए या नहीं वगैरह। हम जीव विज्ञान और समाज विज्ञान से निर्मित हुए हैं, उनके मिले-जुले असर से। हममें से कुछ लोग प्रार्थना करने को प्रेरित होते हैं, मगर उसकी खोजबीन विज्ञान से की जा सकती है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आज कर सकते हैं, आज विज्ञान उस मुकाम तक नहीं पहुंचा है मगर आंतरिक विश्व भी विज्ञान का विषय है।

पंचापकेसनः मैंने ज़िक्र किया था कि मैं मानकर चल रहा हूं कि हमारी स्वतंत्र इच्छा होती है, मगर इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि स्वतंत्र इच्छा है। यदि आप सचमुच मानते हैं कि विज्ञान आंतरिक विश्व की पूरी-पूरी व्याख्या कर देगा, तो स्वतंत्र इच्छा नाम की कोई चीज़ नहीं बचेगी, यहां इस पर चर्चा करने में कोई तुक नहीं रहेगी। मेरा मत यह है कि एक सीमा है जहां विज्ञान को रुकना होगा। अन्यथा आपको स्वीकार करना होगा कि हम सब महज़

कठपुतलियां हैं, जो वह खेल दिखा रही हैं जिसे किसी अन्य ने तय कर दिया था जिसने इस सब की उत्पत्ति की है। खैर, इसकी चर्चा हम बाद में कर सकते हैं।

अनाम महिलाः मैं सबको सीखने के मूल्यांकन पर वापिस लाना चाहती हूं जो हमारा मूल विषय था। मेरी जिज्ञासा थी कि होशंगाबाद कार्यक्रम में छात्रों की प्रगति को कैसे आंका जाता था। पूरे समय आप सांख्यिकी शब्द का ज़िक्र करते रहे, मगर मुझे यह स्पष्ट नहीं हुआ कि आप मूल्यांकन कैसे करते थे। चूंकि आप उस दल के सदस्य थे, आप छात्रों की उपलब्धियों का आकलन कैसे करते थे? क्या यह माना जाता था कि सारे छात्रों को सफल होना है क्योंकि वे ग्रामीण छात्र हैं? टीम इसे कैसे संभाल पाती थी? जी हां, सीखने का मूल्यांकन।

पंचापकेसनः आप छात्रों के मूल्यांकन के बारे में पूछ रही हैं। मैंने कहा कि मूल्यांकन इस तरह किया जाता था जिससे मूल्यांकन की प्रक्रिया बेहतर बने। हम सामान्य परीक्षा का उपयोग नहीं करते थे। सवाल काफी सावधानीपूर्वक यह ध्यान में रखकर बनाए जाते थे कि क्या पढ़ाया गया है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रायोगिक परीक्षा होती थी। इसके लिए बाहर से उपकरण लाए जाते थे, मूलतः दिल्ली विश्वविद्यालय से। और हर छात्र की परीक्षा उस तरह होती थी जैसे उच्च कक्षाओं में होती है, मिडिल स्कूल की तरह नहीं। यह सब बढ़िया से होता था। मूल्यांकन उपयुक्त ढंग से किया जाता था। अब बदकिस्मती से उच्च कक्षाओं में भी यह सब मखौल बन गया है। मगर उपयुक्त तरीका क्या है? जैसे वह तरीका जो आई.एस.सी. ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में अपनाता है। कि छात्र एक प्रयोग करेंगे, आप उनसे निष्कर्ष निकालने को कहेंगे, और उनकी जांच करेंगे। हालांकि मूल्यांकन उपयुक्त ढंग से किया जाता था मगर दुर्भाग्यवश, प्रायोगिक परीक्षा में छात्रों के परिणाम बहुत अच्छे नहीं होते थे, और सैद्धांतिक तो और भी बुरा होता था। इसलिए हमें एक ग्राफ बनाने के तरीके का उपयोग करना होता था। अन्यथा सारे बच्चों को 100 में से 0-10 या बहुत हुआ तो 0-20 अंक मिलते। लिहाज़ा हम परीक्षा में विभेदन बढ़ाने के लिए छात्रों को एक ग्राफ पर अंकित करते थे। इसके आधार पर आप कह सकते थे कि यह छात्र उस छात्र से कुछ बेहतर है। और हम पहली बार प्रश्नों का मूल्यांकन करने के बाद उन प्रश्नों को छांटते थे, जो विभेद दर्शाते हों और उन्हें मूल्यांकन में ज़्यादा वज़न (वेटेज) देते थे। इन सारी चीज़ों का खूब अध्ययन हुआ है और इन पर किताबें लिखी गई हैं, मगर मैं इस क्षेत्र का विशेषज्ञ नहीं हूं।

फरीदा खानः अब हम पोर्टफोलियो मूल्यांकन पर एक तकरीर सुनेंगे।

तपस्विनी साहू

पोर्टफोलियो मूल्यांकन

कल जब मैं ट्रेन से यात्रा कर रही थी तो मेरे साथ कई सारे वैज्ञानिक भी थे। वे लोग स्ट्रिंग सिद्धांत, सापेक्षता और परमाणु विज्ञान और परमाणु भौतिकी की बात कर रहे थे। तो, मैंने सोचा मैं कहां हूं? मैं यही सोचती रही कि हार्डी ने मुझे यहां क्यों बुलाया है? मगर इसने मुझे यह सोचने को प्रेरित किया कि साझा सूत्र क्या है। जैसा मैं समझती हूं, साझा सूत्र अवलोकन है। अवलोकन से शुरू करें, तो मैं कहूंगी कि भौतिक शास्त्री वस्तुओं का अवलोकन करते हैं और अपने अवलोकनों के बारे में बात करते हैं और अमूर्त अवधारणाएं प्रतिपादित करते हैं। बतौर मनोवैज्ञानिक मेरा सम्बंध बच्चों का अवलोकन करने, वयस्कों का अवलोकन करने और यह समझने से है कि बच्चे सीखते कैसे हैं। तो यह सूत्र था जो मैं दोनों के बीच खोज पाई। यहां मैं यह करने जा रही हूं कि आपको थोड़ा आपके बचपन में ले जाऊंगी। हम लोग गुड़गांव में हरिटेज स्कूल में काम करते रहे हैं और यह अध्ययन एक प्रोजेक्ट का हिस्सा है। प्रोजेक्ट का नाम है संपूर्ण स्कूल परिवर्तन (whole school transformation), हम इस स्कूल में पिछले डेढ़ साल से काम कर रहे हैं। हम करते यह हैं कि स्कूल में नर्सरी से केजी तक थीम आधारित शिक्षण करते हैं। कुछ शिक्षण अधिगम तय किए जाते हैं और सीखने की इस थीम में गुंथे जाते हैं। फिर शिक्षक पाठ योजनाएं बनाते हैं और थीम उजागर होने लगती है। हमने यह काम उठाया और थीम-आधारित ढंग से आगे बढ़ने का निर्णय किया और चाहते थे कि बच्चे कई सारी चीज़ें कर सकें, कई सारी चीज़ों का अवलोकन कर सकें और उनके बारे में लिख सकें। जब हम आगे बढ़े तो मूल्यांकन की चुनौती सामने आ गई। हमें कैसे पता चले कि बच्चे वास्तव में सीख रहे हैं, कि वे कुछ कर रहे हैं। कैसे पता करें? क्या हम सिर्फ सीखने के अंतिम परिणामों पर ध्यान दें? या सीखने की प्रक्रिया पर? इस सवाल ने हमें हर बच्चे के लिए एक पोर्टफोलियो तैयार करने को प्रेरित किया। दरअसल पोर्टफोलियो विभिन्न समयों पर, विभिन्न स्रोतों से प्राप्त और विभिन्न किस्म के प्रमाणों का संग्रह है।

अब आपके साथ चर्चा के लिए मैं कक्षा 2 की एक बच्ची के पोर्टफोलियों के विश्लेषण का उपयोग करूंगी। थीम थी 'समुदाय'। पोर्टफोलियो को देखते हुए मैं वास्तव में सीखने के विभिन्न क्षेत्र देख सकती थी जिनमें गणित, विज्ञान और